सू आदिवासी और अमेरिकी विद्यालय

● अमन मदान और कल्याणी डिके

बाहरी लोगों द्वारा आदिवासियों को उनकी जगह से विस्थापित कर देने की घटनाओं से इतिहास भरा पड़ा है। ऐसी ही एक घटना अमेरिका में हुई – जब बाहर से आए गोरों ने सदियों से रह रहे 'सू' आदिवासियों को उनकी ही ज़मीन से बेदखल कर दिया। एक समय की विजेता कौम अब दूसरों के रहमोकरम पर रहने को मजबूर थी। पूर्वजों के साथ हुई इस घटना का असर आज भी उनके बच्चों पर दिखता है। और वे इसका विरोध भी करते हैं – अपने तरीके से।

कहते हैं कि विद्यालय विद्या का घर है, बच्चों को 'सभ्य' बनाता है। यही धारणा हमारी शिक्षा प्रणाली का आधार है। परन्तु इसमें कितना सत्य है और कितना भ्रम? आइए एक अमेरिकी दम्पति के अनुभव और उन से उपजे निष्कर्षों पर गौर करें।

आज से करीब 35 वर्ष पहले रोज़ली और मर्रे वैक्स अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में मानव विज्ञान (एन्थ्रोपोलॉजी) पढ़ाते थे। वे अपने आदिवासी छात्रों से बहुत परेशान थे। किसी भी विषय में उन्हें रुचि न थी और न ही वे कक्षा की किसी गतिविधि में हिस्सा लेते थे। यहां तक कि कभी–कभी रोज़ली और मर्रे सोचते थे कि ऐसे छात्रों को विश्वविद्यालय तक पहुंचने कैसे दिया गया।

फिर एक दिन रोज़ली ने अमेरिकी आदिवासियों के इतिहास का ज़िक्र करते हुए कहा कि उन की कला और नृत्य आज भी विश्व स्तर के माने जाते हैं। उसने आदिवासी छात्रों की तरफ देखा तो पाया कि उनकी आंखें चमक रही

वीरता और साहस के लिए प्रसिद्ध थे अमेरिका के 'सू' आदिवासी। गर्व और आत्मविश्वास से भरे एक 'सू' आदिवासी का यह चित्र 1837 में बनाया गया था। इस दौर में 'सू' श्वेतों के संपर्क में आ रहे थे।

थीं। कक्षा के बाद उनके पास पहली बार पूछने के लिए ढेर सारे सवाल थे। रोज़ली खुश भी हुई और हैरान भी।

वैक्स दम्पति जल्द ही समझ गए कि जब भी वे आदिवासी सभ्यता को संजीदगी से लेते, चाहे उसकी निन्दा ही क्यों न कर रहे हों, अन्यथा सुस्त उन्हीं आदिवासी छात्रों में उत्साह और जोश झलक उठता था। ऐसा लगा कि जैसे ज़िन्दगी में पहली बार किसी ने उनकी संस्कृति को अंधविश्वासी और पिछड़ा न कह कर, उसे सार्थक ठोस मानकर उनसे बात की थी।

इसके बाद रोज़ली और मर्रे सोचने पर मजबूर हो गए। वे जानते थे कि आदिवासियों का इतिहास गोरों के हाथों किए गए नरसंहार से भरा था। जिस कौम की आबादी एक करोड़ से ऊपर हुआ करती थी, उसकी जनसंख्या गोरों के अत्याचार, शोषण और उनके द्वारा फैलाई गई बीमारियों के कारण 1890 ई. में ढाई लाख भी नहीं रह गई थी। हज़ारों साल पहले एशिया से आकर बसे इन लोगों की ज़मीनें यूरोप के बाशिन्दों ने बन्दूक की नोक पर हड़प लीं, और इन्हें छोटे-छोटे सीमित क्षेत्रों में रहने के लिए मजबूर किया। उनकी अर्थव्यवस्था को ध्वस्त कर दिया गया और उन की सभ्यता को बिखेर दिया गया था।

शोषण: बच्चों पर असर

क्या आदिवासी घरों में जन्मे बच्चों पर अभी भी ऐतिहासिक शोषण का इतना असर था कि अमेरिकी तालीम में उन की परायों जैसी स्थिति थी? इस सवाल का जवाब सिर्फ एक तरीके से मिल सकत

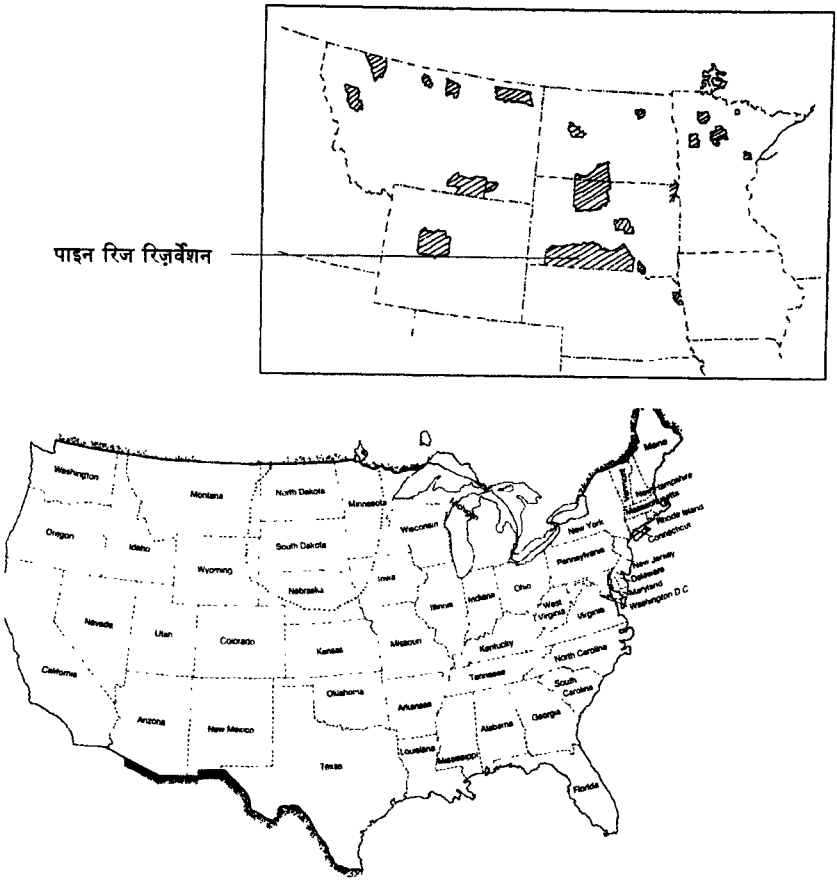

अमेरिका का नक्शा और 'सू' कबीले की रिहाइश की हदः ऊपर बिन्दुओं से बनी अर्ध गोलाकार रेखा से जो हिस्सा घिरा है, पहले 'सू' आदिवासियों का इलाका था। 1868 में उन्हें 'आरक्षित पाइन रिज' में सिमटा दिया गया।

था। रोज़ली और मर्रे ने आदिवासियों के लिए चलाए गए विद्यालयों का अध्ययन करने का निश्चय किया।

उन्होंने छुट्टियों में 'सू' आदिवासियों की बस्ती में जाना शुरू किया। यह बस्ती अमेरिका के साऊथ डैकोटा प्रांत में स्थित, 'पाइन रिज रिज़रवेशन' का हिस्सा थी। रिज़रवेशन का अमेरिका में मतलब

बाइसन का शिकार: 'सू' बाइसन पर बहुत हद तक निर्भर थे। एक समय में खुले मैदानों में बाइसन के ढेरों झुंड थे। लेकिन फिर अमेरिकी फौज ने इन्हें लाखों की तादाद में ज़मीन और खाल के लिए मार दिया। इस तरह से आदिवासियों की तो कमर ही टूट गई।

बाइसन का पीछा करते घोड़े पर सवार 'सू' आदिवासी का यह चित्र 1832 में जॉर्ज केटलिन नाम के चित्रकार ने बनाया था। केटलिन पेशे से एक वकील थे लेकिन बाद में पेंटर बन गए।

आरक्षण ही है, परन्तु रेल या कॉलेज की सीटें नहीं, बल्कि रहने का स्थान। सन् 1868 ई. में अमेरिकी सेना ने 'सू' कबीले को एक समझौते पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया था। जिसके तहत वे अपनी सारी ज़मीनों को त्याग, इस छोटे से आरक्षित क्षेत्र में सीमित रह गए थे। (नक्शों में गोरों के पहले आगमन के समय 'सू' की हदें, और आज के रिज़रवेशन दिखाए गए हैं।) समझौते में किए गए वादे अमेरिकी सरकार ने खुद ही तोड़ने शुरू कर दिए और 1890 तक यहां फौज और आदिवासियों के बीच झड़पें होती रहीं। अमेरिकी इतिहास की सबसे घिनौनी वारदातों में से एक यहीं गुज़री जब 'पाइन रिज' में बून्डेडनी नामक जगह पर फौजियों ने 300 से अधिक 'सू' आदमियों, औरतों और बच्चों को भून डाला था।

अब इन्हीं 'सू' के लिए गोरों द्वारा विद्यालय चलाए जा रहे थे जहां उन्हें 'सभ्य' बनाया जा रहा था और उन्हें 'मुख्य धारा' में लाए जाने की कोशिश की जा रही थी।

रोज़ली और मर्रे 'सू' का इतिहास बखूबी जानते थे और मानते थे कि उन के साथ बहुत ज़्यादती हुई है। 'पाइन रिज रिज़रवेशन' में उन्होंने जो हाल देखा उस से उन्हें और भी दुख हुआ। जं कौम पूरे अमेरिका में सब से खुद्दा

होने का दावा किया करती थी, वही अब सरकार से दिए गए भीख समान राशन पर गुज़ारा कर रही थी। सिर्फ 100 वर्ष पहले यहां के नौजवान घोडों पर सवार बाइसन नामक जंगली भैंसे का शिकार करके सारे कबीले का पोषण करते थे। खुले मैदानों में घूमते बाइसन के विशाल झुंड उन के समाज के आधार स्तम्भ थे। मांस, खाल, पिंजर, अंतड़ी सभी प्रयोग में आते। उन का भोजन, उन का पहनावा, उनका तम्बुनुमा घर, यहां तक कि उनके साज़ और बच्चों के खिलौने भी बाइसन के शरीर से ही बनते थे। वे कभी व्यर्थ में बाइसन पर हाथ न उठाते, जितनी ज़रूरत थी, उतने ही मारते। प्रकृति में उनका और बाइसन का इस विशाल क्षेत्र में संतुलन-सा बना हुआ था।

फिर अमेरिकी फौज ने ब्राइसन के चारागाह छीन लिए और अपने यूरोप से आए बाशिन्दों को बांट दिए। बाइसन की खाल को बाज़ार में बेचने के लिए उन्हें लाखों की गिनती में मार डाला। जिस देश में बाइसन के झुण्डों से धरती कांपती थी और मिट्टी उड़कर सूरज को छुपा लेती, वहां आज सिर्फ मुट्ठी भर बाइसन बचे हैं।

.... कहां गई वो संस्कृति

समझौता किया गया था कि रिज़रवेशन में बंद 'सू आदिवासियों' को अमेरिकी सरकार भोजन का सामान दिया करेगी। फिर उन्हें तम्बुओं के लिए कपड़ा भी देना पड़ा और अन्य वस्तुएं भी। जिस कौम ने हज़ारों साल बाइसन के साथ एक साझा जीवन व्यतीत किया था, उस की तो जड़ें ही उखड़ गईं। पेट तो भर गया परन्तु उन गीतों का क्या होता जो

अब यहां, ऐसे रहते हैं: आरक्षित क्षेत्रों में बने 'सू' आदिवासियों के घर। एक समय की सबसे खुद्दार कौम को किन हालातों में रहना पड़ रहा है, बहुत कम अमेरिकियों को इसकी जानकारी है।

ऊपर भालू नृत्य और नीचे खोपड़ी नृत्य

शिकार पर निकलते समय गाए जाते? और उन नृत्यों का क्या जिस में सब से वीर योद्धा बाइसन के भेष में नाचता? या उन सू सयानों का जो बाइसन की खाल पर कबीले का इतिहास तस्वीरें बना कर अंकित करते?

'सू' की अपनी संस्कृति तो एक खंडहर में तब्दील हो चुकी थी, और उसकी जगह कोशिश की जा रही थी कि मध्यम वर्गीय गोरे अमेरिकियों की संस्कृति उनपर थोपी जाए।

100 वर्ष से अधिक समय से यहां विद्यालय चलाए जा रहे थे, जिनका एक ही मकसद था: सू को 'सभ्य' बनाना। अर्थात विजयी (हमलावर) कौम के गीत, रीति-रिवाज़, धर्म, भाषा, इत्यादि सिखाना। वीर जांबाज़ 'सू' की अपनी संस्कृति या रिवाज़ की इज्जत करना तो क्या उसे समझने की भी कोशिश नहीं की जाती।

शिक्षकों से बात करके पता चला कि वे 'सू' बच्चों से बहुत निराश थे। न तो वे विद्यालय की पढ़ाई में रुचि रखते थे और न ही गीतों या कहानियों में। इस की वजह पूछी जाने पर शिक्षक का जवाब स्पष्ट था – 'सू' बच्चे पिछड़े हुए और मूर्ख थे।

परन्तु रोज़ली और मर्रे का निष्कर्ष कुछ और था। उन्होंने देखा कि सभी अध्यापक बाहर के थे, यहां तक कि उन में से बहुत कम ऐसे थे जो कि 'सू' की मातृभाषा समझ सकते। जिन गुणों को वे अच्छे छात्र के गुण कहते थे, वे एक मध्यम वर्गीय गोरे प्राटेस्टेन्ट धर्म के छात्र में ही मिलते थे। अध्यापक मानकर चलते थे कि ये गुण किसी भी छात्र में आराम से डाले जा सकते हैं। मर्रे और रोज़ली का मत था कि शिक्षक यह भूल जाते हैं कि कोई भी बच्चा शून्य में नहीं रहता। उसके अपने समाज, मित्रों, कुटुम्ब आदि का उस पर गहरा असर होता है और विद्यालय उसके अपने इन अनुभवों को काटने की कोशिश कर रहे थे।

'सू' कबीले के अपने समाज और जीवन के नज़रिए से बच्चों को विद्यालय की गतिविधियों में कोई मतलब नहीं दिखता था। न ही शिक्षक द्वारा सिखाए जाने वाले गाने और कहानियों में उन्हें कोई अपनापन लगता। अपनी कहानियां

अब कहां वो नृत्य और गीत: *वीरता और शौर्य के लिए प्रसिद्ध 'सू' लोगों की जीवनशैली से संगीत और नृत्य बेहद जुड़ा हुआ था। उनके ऐसे ही दो नृत्यों को जॉर्ज केटलिन ने चित्रित किया।*

शिकार पर जाने से पहले: *भालू के शिकार पर जाने से पहले भावी शिकारी कई-कई दिनों तक नाचते थे। इस नृत्य का नेतृत्व मुख्य ओझा करता था। वो भालू का भेष बनाता था। इसके अलावा भी कई लोग भालू के सिर का मुखौटा पहने रहते थे। सब लोग मिलके एक गोल घेरे में नाचते थे।*

खोपड़ी नृत्य: *इसी तरह उनका एक दूसरा नृत्य था, खोपड़ी नृत्य जिसमें नाचते-नाचते सूरवीर 'सू' नगभग उन्माद की स्थिति में पहुंच जाते थे।*

केटलिन ने उस समय आदिवासियों की ज़िंदगी को चित्रित किया जबकि अन्य गोरे लोग इन इलाकों पे बहुत कम परिचित थे।

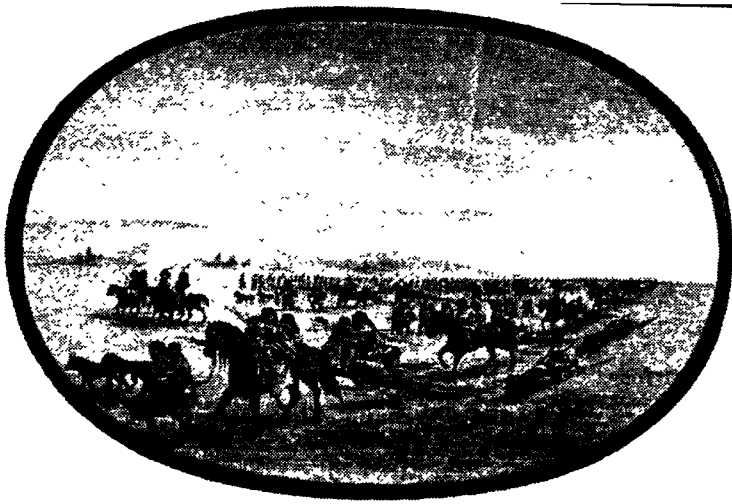

एक जगह से दूसरी जगह जाता 'सू' का कारवां।

और गीत तो वे पहले से सुनते आ रहे थे, इसलिए ये नए किस्से-कहानियां अजीब से लगते थे।

शिक्षक यह सब कुछ नहीं समझते थे। छात्र कक्षा में रुचि नहीं दिखा रहे, इसका उन के लिए एक ही मतलब था कि वे मूर्ख थे। इससे शिक्षकों की यह मान्यता कि 'सू' पिछड़े हैं और ज़्यादा गहरी होती जाती और यही बात 'सू' संस्कृति की कक्षा में चर्चा करते हुए वे दोहराते।

बच्चे भली-भांति समझते थे कि शिक्षकों का उनके और उनके समाज के प्रति क्या नज़रिया था। कक्षा में उन्हें स्पष्ट रूप से, और उसके साथ कई अन्य अस्पष्ट तरीकों से यह बतलाया जाता कि उनका कबीला 'घटिया और पिछड़ा' है। सामाजिक तौर पर तो 'सू' ने अपनी बेइज़्ज़ती बहुत पहले से कुबूल कर ली थी। लेकिन बच्चों का विरोध एक अलग रूप लेता था – कक्षा में खामोश बैठने का। शिक्षक की लाख कोशिशों के बावजूद बच्चे सवालों का जवाब देने या अन्य गतिविधियों में हिस्सा लेने से बचते थे।

रोज़ली और मर्रे का दावा था कि बच्चों की रुचि न लेना मूर्खता नहीं थी, बल्कि उन पर थोपी जा रही एक संस्कृति का विरोध था। उन्होंने कई बार देखा कि अगर कोई बच्चा प्रश्न का उत्तर दे देता तो आधी छुट्टी में उस के सहपाठी उससे लड़ते और उसे डांटते। अपनी सामाजिक ज़िल्लत के बारे में वे चाहे और कुछ न कर पाएं, रूठ तो सकते ही थे।

ऐसा ही था नकल का मामला। शिक्षक चाहते थे कि छात्र परीक्षा में जवाब स्वयं दें, बिना किसी से मदद लिए। लेकिन 'सू' समाज की रीत थी कि हर काम इकट्ठा किया जाए – शिकार, गाना,

तम्बू बनाना .....। परिस्थितियां बदल गई थीं परन्तु वह सामूहिकता अभी भी बुलन्द थी। अगर मित्र दुविधा में हो तो कोई साथी छात्र कैसे मौन रहे। और फिर यह एक तरीका भी था अपने को ऊंचा समझने वाले शिक्षकों को ठेंगा दिखाने का।

इस अध्ययन के आधार पर मर्रे और रोज़ली ने जो लेख लिखे वे काफी प्रभावशाली रहे। उनका सबसे महत्वपूर्ण निष्कर्ष था कि बच्चों को शून्य में देखना गलत है। ऐसी दृष्टि से ही शिक्षक उन्हें सिर्फ मूर्ख या होशियार कह सकते हैं। जबकि न सिर्फ बच्चों के समाज को समझने की ज़रूरत है, उस के साथ-साथ इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि विद्यालय और पाठ्यक्रम किस तरह के नज़रिए पर ज़ोर दे रहा है। तभी एक सार्थक विद्यालय रचाया जा सकता है, अन्यथा एक संस्कृति को दूसरे से 'ऊंचा' कह कर उसे दूसरे पर थोपे जाने का खतरा है।

उन दिनों (और अब भी) अमेरिकी आदिवासी अपने हक मांगने के लिए आंदोलन चला रहे थे। वैक्स दम्पति और इन जैसे कई अन्य विद्वानों के शोध ने आदिवासियों की शिकायतों के ठोस सबूत दिए। 1969 में सरकार की एक कमेटी ने स्वीकार किया कि, 'आदिवासियों के लिए चलाए विद्यालय एक राष्ट्रीय स्तर की त्रासदी थे।' 1972 के बाद कई सुधार किए गए। विद्यालय के पाठ्यक्रम और संचालन में आदिवासियों को हिस्सेदारी दी गई। आदिवासी संचालित कॉलेज स्थापित किए गए। सुधार हुआ, परन्तु अभी भी बहुत कुछ रहता है करने के लिए। समस्या सामाजिक है और उसका हल सिर्फ विद्यालयों में नहीं हो सकता। 'सू' और अन्य आदिवासियों की आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को लेकर संघर्ष अभी भी जारी है।

'सू' और अमेरिकी विद्यालय

अब फिर अपने शुरूआती सवाल पर लौटें। हां, विद्यालय की यह कोशिश ज़रूर है कि वह बच्चों को सभ्य और सुसंस्कृत बनाए, परन्तु सवाल तो यह है कि किसकी सभ्यता और किसकी संस्कृति? 'सू' विद्यार्थियों को विद्यालय लगातार यह कह रहा था कि उनका सारा रहन-सहन का ढंग, उनका इतिहास एक घटिया, मूर्ख कौम का था। उस की जगह गोरों की मध्यम वर्गीय संस्कृति को स्थापित करने की कोशिश चल रही थी।

कहते हैं कि सारी दुनिया का चक्कर लगाने के बाद इन्सान फिर अपने घर ही लौटता है और उसे नई नज़र से देख सकता है। आप भी विचार कीजिए कि भारत में कौन-सी परम्पराओं, सभ्यताओं, विचारों को विद्यालयों में चलाया जा रहा है?

अमन मदान: जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के विभाग में शोधरत।
कल्याणी डिके: दिल्ली में कार्यरत।